वाद के समर्थक अपनी मान्यताओं की जांच या पुष्टि के लिए मार्क्सवाद का ज्ञान प्राप्त करते हैं, उसके गुण-दोषों पर विचार करते हैं और उसके विकल्प प्रस्तुत करते हैं। ***मार्क्स*** ने जिन विचारों और उनसे जुड़ी हुई शब्दावली का प्रयोग किया, वे सामाजिक विज्ञानों के विवेचन का महत्वपूर्ण संदर्भ प्रस्तुत करते हैं। उदाहरण के लिए, मार्क्स ने इतिहास के जिन युगों (दास प्रथा, सामंतवाद, पूंजीवाद, समाजवाद और साम्यवाद) की चर्चा की और समाज के जिन वर्गों (बुर्जुवा वर्ग और सर्वहारा वर्ग) का विवरण दिया; वे विश्वजनीन प्रयोग के विषय बन चुके हैं।

मोटे तौर पर हम *मार्क्स* के विचारों को दो मुख्य धाराओं के रूप में देख सकते हैं। पहली धारा में उन विचारों के समुच्चय को रखते हैं जिन्हें हम चिरसम्मत मार्क्सवाद (Classical Marxism) के रूप में पहचानते हैं और दूसरी धारा में ***मार्क्स*** के मानववादी चिंतन (Humanist Thought) को रखा जाता है जिसे तरूण *मार्क्स* (Young Marx) के विचारों के रूप में पहचाना जाता है।

द्वन्दात्मक भौतिकवाद

मार्क्स द्वारा विकसित द्वंदात्मक भौतिकवाद हीगलवादी द्वंदात्मकता के विपरीत प्रत्येक वस्तु की व्याख्या पदार्थ के विरोधाभास के संदर्भ में करता है और प्राकृतिक एवं सामाजिक परिवर्तन के लिये अमूर्त नियम प्रदान करता है। द्वंदात्मक भौतिकवाद की मान्यता है कि (1) प्रकृति में वस्तुएं अंतर्सम्बन्धित व अंतर्निर्भर होती हैं तथा एक दूसरे के द्वारा निर्धारित की जाती हैं। (2) वस्तुत: विश्व में कुछ भी शाश्वत रूप में स्थायी नहीं है अपितु प्रत्येक वस्तु निरंतर परिवर्तन के दौर से गुजर रही है। (3) ये परिवर्तन क्रमिक न होकर एकाएक क्रांतिकारी रूप से होते हैं। द्वंदात्मक भौतिकवाद तीन नियमों पर आधारित है -

विपरीत की एकता एवं संघर्ष का नियम

विपरीत की एकता एवं संघर्ष का नियम द्वंदात्मकता का केन्द्रीय पक्ष है। यह नियम भौतिक जगत के विकास तथा शाश्वत परिवर्तन के वास्तविक कारण अर्थात् स्रोतों को उजागर करता है। इसके अनुसार वस्तुओं या प्रघटनाओं में आंतरिक प्रवृत्तियां तथा शक्तियां होती हैं जो कि परस्पर विपरीत होती हैं। अर्थात संसार की प्रत्येक वस्तु परस्पर विरोधी तत्वों से बनी हुई है। इन परस्पर विपरीत प्रवृत्तियों अथवा विरोधाभासों के विभिन्न अंतर्सम्बन्ध विपरीत की एकता के लिए उत्तरदायी होते हैं। विश्व की वस्तुओं एवं प्रघटनाओं का यह विरोधाभास सामान्य व सार्वभौमिक प्रकृति का होता है। विश्व की कोई भी वस्तु अथवा प्रघटना ऐसी नहीं हैं, जिसे कि विपरीत में विभक्त न किया जा सके। परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों अथवा विपरीत में सह-अस्तित्व होता है तथा एक के बिना दूसरे के बारे में सोचा नहीं जा सकता। फिर भी, ये विपरीत शक्तियां किसी भी वस्तु में शांति से सह-अस्तित्व में नहीं रह सकती। इन विपरीत शक्तियों की परस्पर विरोधी प्रकृति इनमें अनिवार्यत: संघर्ष पैदा करती है। प्राचीन एवं नवीन, नवोदित एवं पुरातन के मध्य संघर्ष अनिवार्य है। विपरीत की एकता संघर्ष की एक आवश्यक दशा है क्योंकि संघर्ष तब ही घटित होता है, जब किसी एक वस्तु अथवा प्रघटना में विपरीत शक्तियां अस्तित्व में होती हैं। प्राय: इन विरोधी शक्तियों में से एक शक्ति यथास्थिति को बनाये रखना चाहती है और दूसरी शक्ति यथास्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन लाना चाहती है। इस संघर्ष के कारण अनेक मात्रात्मक परिवर्तनों के पश्चात जब भी परिपक्व अवस्थाएं अस्तित्व में आती हैं तो एक नई स्थिति, वस्तु, प्रघटना या अवस्था या परिवर्तन का जन्म होता है। यह क्रांतिकारी गुणात्मक परिवर्तन है।

इस प्रकार सभी प्रकार के परिवर्तनों का स्रोत आंतरिक विरोधाभास है। नये विरोधाभासों का प्रादुर्भाव एक नये प्रकार के परिवर्तन को जन्म देता है, जबकि इन विरोधाभासों की विलुप्ति एक और नये प्रकार के परिवर्तन का कारण बनती है। इस नए परिवर्तन के लिए अन्य विरोधाभास उत्तरदायी होते हैं। विपरीत तत्त्वों में कभी संभावना नहीं आ पाती है। विपरीत तत्त्वों का समान प्रभाव अस्थायी व सापेक्षिक होता है जबकि उनके बीच संघर्ष हमेशा चलता रहता है। विपरीत की एकता व संघर्ष के इस अमूर्त नियम को सामाजिक विकास के इतिहास की क्रमिक उत्पादन प्रणाली पर लागू किया जाए तो इसको सरलता से समझा जा सकता है।

निषेध के निषेध का नियम

हीगल की मान्यता थी कि निषेध की अवधारणा विचार तथा चिंतन में उपजती है। ***मार्क्स*** ने हीगल की आलोचना की तथा निषेध की भौतिकवादी व्याख्या दी और बताया कि निषेध यथार्थ के विकास का एक अभिन्न अंग है। किसी भी क्षेत्र में कोई भी तत्व अपने पूर्व के अस्तित्व के स्वरूप को नकारे बिना विकसित नहीं हो सकता है।

इस प्रकार समाज का इतिहास भी प्राचीन सामाजिक व्यवस्था में नई व्यवस्था द्वारा निषेधों की एक श्रंखला है। पूंजीवाद

Scanned with CamScanner

सामन्तवादी समाज का निषेध है तथा विज्ञान के क्षेत्र में भी प्रत्येक नया वैज्ञानिक सिद्धांत प्राचीन सिद्धांतों का निषेध करता है।

इस नियम का मूल द्वन्द है। जब तक पुरानी पद्धति से नयी पद्धति संघर्ष नहीं करती, विकास नहीं हो सकता। निषेध किसी वस्तु अथवा प्रघटना में बाहर से प्रविष्ट नहीं करता है अपितु यह किसी वस्तु अथवा प्रघटना के आंतरिक विकास का ही परिणाम होता है। वस्तुएं अथवा प्रघटनाएं स्वयं में निहित आन्तरिक विरोधाभासों के आधार पर विकसित होती हैं वे अपने ही विनाश की दशाएं उत्पन्न करती हैं। इस प्रकार, समाजवाद पूंजीवाद का स्थान इसलिए लेता है क्योंकि यह पूंजीवाद व्यवस्था के आंतरिक विरोधाभासों का समाधान करता है।

नई अवस्था कभी भी पुरानी अवस्था को पूरी तरह से नहीं बदलती है। यह पुरानी अवस्था में से कुछ विशिष्ट तत्वों अथवा पक्षों को अपने में समेट लेती है और यह क्रिया भी इसमें यान्त्रिक रूप से घटित नहीं होती अपितु अपनी स्वयं की प्रकृति के अनुरूप नई अवस्था प्राचीन तत्वों को अपने आप में आत्मसात तथा परिवर्तित करती है।

इन्हीं कारणों से विकास की अवस्थाओं में क्रमिक परिवर्तन होता है। यद्यपि कोई भी अवस्था पूर्ण रूप से पुर्नघटित नहीं होती, फिर भी पिछली अवस्थाओं की कुछ विशेषताएं, बाद की अवस्थाओं में रूपान्तरित स्वरूप से आ जाती हैं इस प्रकार प्राचीन समाप्त हो जाता है और नया उदित होता है। यह विकास की एक अवस्था मात्र है; अन्तिम स्थिति नहीं क्योंकि विकास कभी नहीं रुकता। कोई भी नई अवस्था सदैव नई और स्थायी नहीं रहती। विकास की प्रक्रिया में और अधिक प्रगतिशील अवस्था के लिए दशाएं बनने लगी हैं और जब ये नई दशाएं परिपक्व हो जाती हैं तो एक बार पुन: निषेध घटित होता है और इसी को निषेध का निषेध कहते हैं। इसमें पहले निषेध के बाद वाला निषेध उच्चतर स्थिति का होता है यह प्रक्रिया अनवरत रूप से चलती रहती है।

मात्रात्मक से गुणात्मक परिवर्तनों में परिवर्तन का नियम

प्रकृति में प्रत्येक वस्तु निरंतर परिवर्तन की स्थिति में हैं। किसी भी नियत समय पर कुछ वस्तुएं अस्तित्व में रहती हैं, कुछ वस्तुएं विकसित होती रहती हैं तथा कुछ वस्तुएं नष्ट होती रहती हैं। मार्क्स की मान्यता थी कि यथार्थ का नियम परिवर्तन का नियम है। परिवर्तन की प्रकृति सरल अथवा क्रमिक नहीं होती अपितु यह मात्रात्मक परिवर्तनों के रूप में होती रहती है और परिपक्व दशाओं की उपलब्धि होने पर किसी भी निश्चित समय पर अमूर्त गुणात्मक परिवर्तनों में परिवर्तित हो जाती है। घटनाओं की पुनरावृत्ति कभी नहीं होती। यह परिवर्तन सदैव निम्न से उच्चतर की ओर, सरल से जटिल की ओर होती है।

गुणात्मक परिवर्तन को किसी भी नई अवस्था के उद्भव तथा किसी भी प्राचीन अवस्था की समाप्ति का तार्किक एवं दार्शनिक रूप कहा जा सकता है। जबकि मात्रात्मक परिवर्तनों के अन्तर्गत अन्य सभी परिवर्तन जिनमें किसी भी वस्तु के विभिन्न अंग पुनर्व्यवस्थित हो जाते हैं, के रूप में समझा जा सकता है। गुणात्मक परिवर्तनों के दो स्वरूप होते हैं: (1) कोई वस्तु जिसका अस्तित्व नहीं था, किन्तु अब वह अस्तित्व में आ गया है तथा (2) कोई वस्तु जो पहले अस्तित्व में थी लेकिन अब उसका अस्तित्व समाप्त हो गया है। दूसरी ओर मात्रात्मक परिवर्तन असीमित रूप से व्यापक होते हैं। उदाहरणार्थ छोटा-बड़ा, समृद्ध-निर्धन आदि। वस्तुत: प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में मात्रात्मक परिवर्तन निरंतर घटित होते रहते हैं। जब निरंतर परिवर्तन एक विशिष्ट सीमा तक पहंच जाता है, जिसके बाद और अधिक मात्रात्मक परिवर्तन संभव नहीं है। तब इसे बड़े परिवर्तन को गुणात्मक परिवर्तन की संज्ञा दी जाती है।

द्वंदात्मक भौतिकवाद के नियमों का प्रयोग

द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धांत प्रकृति, विश्व एवं समाज पर समान रूप से लागू होते हैं। जब इन नियमों को समाज के इतिहास पर लागू किया जाता है तो ये ऐतिहासिक भौतिकवाद के रूप में जाने जाते हैं। ***मार्क्स*** के अनुसार मानवीय समाज चार प्रमुख उत्पादन प्रणालियों से होकर गुजरा है जिनके नाम-आदिम साम्यवाद, दास प्रथा, सामंतवादी एवं पूंजीवादी प्रणाली हैं। मार्क्सवादी सिद्धांत की भविष्यवाणी के अनुसार समाज अन्तत: साम्यवाद की अवस्था तक पहुंचेगा।

स्पष्ट है कि उत्पादन के क्रमिक तरीकों, स्वरूपों एवं सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या समझने के लिए द्वंदात्मक भौतिकवाद के नियमों प्रयोग कर ***मार्क्स*** ने क्रमिक विकास में निम्न उत्पादन प्रणालियों की पहचान की है।

आदिम साम्यवादी समाज

आदिम साम्यवादी समाज उत्पादन प्रणाली का सरलतम स्वरूप था। इस उत्पादन प्रणाली में नये उन्नत किस्म के औजारों, जैसे-कि तीर-कमान आदि का विकास हुआ तथा मनुष्य ने आग

Scanned with CamScanner

का प्रयोग करना सीखा। ये परिवर्तन द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के नियमों के संदर्भ में मात्रात्मक परिवर्तन थे। कृषि एवं पशुपालन भी इसी प्रकार के परिवर्तनों के उदाहरण थे. उत्पादन शक्तियां अत्यधिक निम्नस्तर की थीं तथा उत्पादन अनुरूप ही संबंध थे। समाज में उत्पादन के साधनों पर समान व सामुदायिक स्वामित्व था। अत: उत्पादन के संबंध सहकारिता और परस्पर सहायता पर आधारित थे। ये संबंध इस तथ्य से निर्धारित होते थे कि प्रकृति की शक्तियों का मुकाबला आदिम व्यक्ति अपने आदिम औजारों के साथ सामूहिक रूप से ही कर सकता था।

आदिम समाज में भी उत्पादन शक्तियां निरंतर विकसित होती रहीं। नये औजार बने और कार्य कौशल को धीरे-धीरे बढ़ाया गया। उत्पादकता के विकास के साथ-साथ समाज की सामुदायिक संरचना कमजोर होकर परिवारों के रूप में सीमित होने लगी। ऐसी स्थिति में निजी सम्पत्ति की अवधारणा विकसित हुई तथा धीरे-धीरे उत्पादन के साधनों पर परिवारों का स्वामित्व होने लगा। यहां पर उत्पादन के सामुदायिक संबंधों तथा शोषक वर्ग के संभावित स्वरूपों के मध्य विरोधाभास के कारण गुणात्मक परिवर्तन हुआ, अर्थात् आदिम साम्यवादी उत्पादन प्रणाली का प्राचीन उत्पादन प्रणाली या दास प्रथा में परिवर्तन हुआ। इस व्यवस्था में विपरीत शक्तियों के मध्य संघर्ष हुआ जिसके परिणामस्वरूप आदिम साम्यवादी व्यवस्था में निषेध हुआ। इसके फलस्वरूप दास प्रथा की एक नई अवस्था अस्तित्व में आई।

दास प्रथावादी समाज

समाज के इस स्वरूप में आदिम समानता का स्थान सामाजिक असमानता ने ले लिया तथा दासों और मालिकों के वर्गों का उदय हुआ। उत्पादन शक्तियों में और मात्रात्मक परिवर्तन हुए। दास प्रथावादी समाज में उत्पादन के संबंध मालिकों के सम्पूर्ण स्वामित्व पर आधारित थे। मालिकों का उत्पादन के साधनों, दासों तथा उनके द्वारा किए गए उत्पादन पर स्वामित्व होता था।

इस समाज में मालिक और दासों के मध्य विरोध मौजूद था। जब इन विरोधाभासों के मध्य संघर्ष परिपक्व दशाओं तक पहुंच गया तो समाज में गुणात्मक परिवर्तन हुआ। अर्थात दास प्रथावादी समाज का निषेध हुआ, जिसके फलस्वरूप यह समाज सामन्तवादी समाज में बदल गया। विपरीतों के संघर्ष अर्थात मालिक और दासों के बीच संघर्ष के कारण हिंसक दास क्रांतियां हुईं, यह दास प्रथावादी समाज का निषेध था। अत: सामंतवादी व्यवस्था को निषेध का निषेध कहा जा सकता है।

सामंतवादी समाज

दास प्रथा पहली अवस्था थी, जिसमें उत्पादन के संबंध मालिक वर्ग द्वारा दास वर्ग के शोषण तथा आधिपत्य पर आधारित थे। यह वह अवस्था थी जहां से वर्ग असमानता और वर्ग संघर्ष का इतिहास शुरू हुआ है। सामंतवादी अवस्था में, उत्पादन की शक्तियों में तीव्र मात्रात्मक परिवर्तन हुए जिसके अंतर्गत पहली बार ऊर्जा, जल तथा वायु जैसे अजैवकीय साधनों का प्रयोग हुआ। इन उत्पादन शक्तियों के विकास में सामंतवादी उत्पादन के संबंधों से सहायता मिली। सामंतवादी भूपतियों ने भूमिहीन किसानों को उत्पीड़ित एवं शोषित किया। कालांतर में नगरों का विकास हुआ। इस अवस्था में व्यापार व वाणिज्य तथा उत्पादन भी बढ़ा। सामंतवादी जागीरों से अनेक भूमिहीन किसान नवविकसित नगरों में चले गये ताकि वे वहां व्यापार कर सकें। सामंतवादी व्यवस्था में भूमिहीन किसानों और सामंतवादी भूपतियों के बीच संघर्ष अपनी परिपक्वता पर पहुंच गया। सामंतवादी व्यवस्था का पतन हुआ तथा इसका निषेध पूंजीवादी व्यवस्था थी।

पूंजीवादी समाज

निजी स्वामित्व पर आधारित पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली सामंती समाज के संबंध का परिणाम थी। उत्पादन के पूंजीवादी संबंध इन शक्तियों के अनुरूप नहीं रह गये थे। ये संबंध शक्तियों के विकास में बाधा बन गए। पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली का सर्वाधिक महत्वपूर्ण विरोधाभास पूंजीवादी समाज में उत्पादन का स्पष्ट सामाजिक स्वरूप होता है। विशालकाय फैक्ट्रियों के लाखों श्रमिक एक साथ मिलकर काम करते हैं तथा सामाजिक उत्पादन में भाग लेते हैं, जबकि उत्पादन के साधनों के स्वामियों का एक छोटा सा समूह उनके श्रम के लाभ को हड़प लेता है। यह पूंजीवाद का मूलभूत आर्थिक विरोधाभास है। ये विरोधाभास विपरीतों के संघर्ष, आर्थिक संकट और बेरोजगारी को जन्म देते हैं। यह स्थिति पूंजीवादी और सर्वहारा वर्गों के बीच तीव्र वर्ग संघर्ष का कारण बनती है, अर्थात् मात्रात्मक परिवर्तनों का कारण बनती है। यह श्रमिक वर्ग एक सामाजवादी क्रांति लाएगा। **मार्क्स** के अनुसार यह क्रांति पूंजीवादी उत्पादन के संबंधों को समाप्त कर देगी तथा एक नवीन गुणात्मक परिवर्तन लाएगी अर्थात् समानता पर आधारित नई सामाजिक-आर्थिक संरचना स्थापित होगी।

नई साम्यवादी सामाजिक-आर्थिक संरचना समाजवाद एवं साम्यवाद की दो अवस्थाओं से गुजरकर विकसित होगी। समाजवाद

Scanned with CamScanner

में उत्पादन के साधनों का निजी स्वामित्व समाप्त हो जाता है और साथ ही सभी प्रकार के असमानता और उत्पीडन के स्वरूप और शोषण भी समाप्त हो जाते हैं। इसमें उत्पादन के साधनों में सर्वहारा वर्ग सामूहिक रूप से उत्पादन के साधनों का स्वामी होगा तथा समाज के सदस्यों की आवश्यकता के अनुसार उत्पादन वितरित होगा। यह अवस्था सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व की अवस्था है जो कि बाद में राज्य व्यवस्था को भी समाप्त करके राज्यविहीन समाज की स्थापना करेगी। राज्यविहीन समाज की यह अवस्था साम्यवाद में संभव होगी। जहां द्वंदात्मकता अन्ततः समाप्त हो जाएगी और एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना होगी जो किसी भी प्रकार के विरोधाभास से मुक्त होगी लेकिन द्वंदात्मकता के नियमों के अनुसार विरोधाभास बने रहेंगे, क्योंकि ये विकास के मूल आधार हैं। साम्यवाद के अंतर्गत मानव तथा प्रकृति के बीच विरोधाभास इतना है कि उच्च तकनीकी से प्रकृति का अधिक प्रभावशाली तरीके से शोषण किया जाएगा।

Scanned with CamScanner